पं० भगवानदास जैन, शास्त्री

प्राचीन वास्तुशिल्प

'वास्तुशिल्प' प्राचीन भारतीय संस्कृति का एक प्रधान अंग है. इस विषय के अनेक ग्रंथ विद्यमान होने पर भी उनका अध्ययन न होने से अधिक प्रचार नहीं हो सका है. प्राचीन देवालयों, राजप्रासादों, दुर्गों, नगरों, गांवों, कुवों, वावड़ियों और सरोवर आदि की मनोहर सुन्दर आकृति देखकर के अपना मन प्रफुल्लित हो जाता है. यही प्राचीन वास्तुशिल्प है. जैनागमों में भी चक्रवर्तियों और देवों के भवनों का विस्तृत व सुंदर वर्णन है. इनकों बनाने वाले को 'स्थपति' अथवा 'सूत्रधार' कहा जाता है, जो आधुनिक देवालय और मकान आदि के बनाने वाले, लकड़ी के काम करने वाले बढ़ई और मिट्टी के बर्तन आदि बनाने वाले कुम्हार आदि के रूप में विद्यमान हैं. जैनागमों में चक्रवर्ती के चौदह महारत्नों में एक वार्धिकीरत्न भी होता है. यह सूत्रधार है जो चक्रवर्ती की इच्छानुसार उनके मनपसंद की इमारत शीघ्र ही तैयार कर देता है. इसको 'विश्वकर्मा' भी कहा गया है. प्रचलित में तो देवों के भवन आदि बनाने वालों को विश्वकर्मा कहते हैं. ऐसे इमारती काम करनेवाले शिल्पियों की विश्वकर्मा के नामकी दक्षिण देश में एक जाति भी विद्यमान है, इसलिए वास्तुशिल्प के काम करनेवाले को विश्वकर्मा के नाम से संबोधन किया जाय तो कोई अतिशयोक्ति नहीं है.

प्राणियों के निवासस्थान को वास्तु कहा गया है. उसकी उत्पत्ति के विषय में वास्तुशिल्प के प्राचीन 'अपराजित पृच्छा' नामक बृहत् ग्रंथ में लिखा है कि—अंधकासुर का विनाश करने के लिये महादेवजी को युद्ध करना पड़ा. इसके परिश्रम से महादेवजी के कपाल से पसीने का एक बिंदु भूमि के ऊपर अग्निकुंड में गिरा. इससे एक महाकाय भूत उत्पन्न हुआ. उसे देवों ने औंधा पटक दिया और उसके ऊपर पैंतालीस देव चढ़ बैठे और रहने लगे. इन देवों का महाकाय भूत के ऊपर निवास होने से उसको वास्तुपुरुष माना गया. इसलिए गृहादि के आरंभ में और समाप्ति में इन देवों का पूजन प्रचलित हुआ जो वास्तुपूजन के नाम से प्रसिद्ध है.

वास्तुशिल्प जानने के लिये अपराजितपृच्छा, समरांगणसूत्रधार, प्रासादमंडन, शिल्परत्नम्, मयमतम् और परिमाणमंजरी आदि अनेक ग्रंथ मुद्रित हुए हैं. जैन वास्तुशिल्प के 'वत्थुसारपयरण' और 'जिनसंहिता' आदि मुख्य ग्रंथ हैं. वत्थुसार-पयरण में प्रथम गृहप्रकरण, दूसरा मूर्तिप्रकरण और तीसरा देवालयप्रकरण है. जिनसंहिता में देवालय और मूर्तिनिर्माण का वर्णन है. इसमें प्रासाद की चौदह जातियों में से द्राविड़ जाति के प्रासाद का वर्णन है. यह दाक्षिणात्य पद्धति का होने से सर्वदेशीय नहीं बन सका. आचार्य श्री वसुनंदी कृत प्रतिष्ठासार में जो देवालय-निर्माण का वर्णन है, यह नागर जाति का होने से सर्वदेशीय है.

महल, मकान और देवालय-निर्माण के समय प्रथम भूमिपरीक्षण किया जाता है. वत्थुसारपयरण में लिखा है :

'दिणतिग-बीअप्पसवा चउरंसाऽवम्मिणी अफुट्टा अ ।
असल्ला भू सुहया पुव्वेसाणुत्तरंबुवहा ।
वम्मइणी वाहिकरी ऊसरभूमीइ हवइ रोरकरी ।
अइफुट्टा मिच्चुकरी दुक्खकरी तह अ ससल्ला ।'

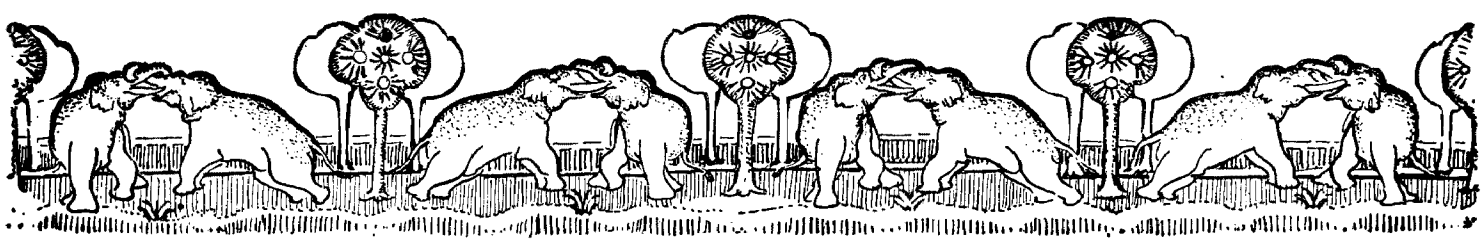

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जिस भूमि में बीज बोने से तीन दिन में अंकुर निकल जाय ऐसी समचौरस, दीमक रहित, विना फटी हुई और शल्य रहित, तथा पूर्व, ईशान और उत्तर दिशा की तरफ नीची भूमि मकानादि बनाने के लिये प्रशस्त है. दीमक वाली भूमि व्याधिकारक है. ऊसर भूमि उपद्रवकारक है. अधिक फटी हुई भूमि मृत्युकारक और शल्यवाली भूमि दुःख कारक है. किसी भी प्राणी की हड्डी, बाल आदि भूमि में रह जाना शल्य माना है. उसकी शुद्धि के लिये कम से कम तीन फुट भूमि गहरी खोदनी चाहिये. शास्त्र में लिखा है—'मनुष्य की हड्डी का शल्य रह जाय तो मकान मालिक की मृत्यु हो. गधे की हड्डी का शल्य रह जाय तो राजदंड भोगना पड़े. कुत्ते का शल्य रह जाय तो बालक जीवे नहीं. बालक का शल्य रह जाय तो उस मकान में मालिक का निवास नहीं हो, गौ का शल्य रह जाय तो धन का विनाश हो, इत्यादि अनेक दोष शास्त्र में लिखे हैं. इसकी शुद्धि के लिये समरांगणसूत्रधार वास्तुग्रंथ में लिखा है :

'जलान्तं प्रस्तरान्तं वा पुरुषान्तमथापि वा।
क्षेत्रं संशोध्य चोद्धृत्य शल्यं सदनगारभेत्।'

पानी आ जाय अथवा पाषाण आ जाय वहाँ तक अथवा एक पुरुष प्रमाण भूमि को खोद करके कोई शल्य होवे तो निकाल देना चाहिए तत्पश्चात् उस भूमि के ऊपर गृह बनाना चाहिए.

पीछे जैसे लड़के-लड़कियों के विवाह में राशि, गण, नाड़ी आदि का मिलान किया जाता है वैसे भूमि का क्षेत्रफल, आय, व्यय, राशि, गण, नाड़ी आदि गृहस्वामी के साथ मिलाये जाते हैं. उसी के अनुसार अच्छे शुभ मुहूर्त में चंद्रमा आदि का बल देख करके मकान तैयार किया जाता है. धन, मीन, मिथुन और कन्या इन सूर्य की राशियों में कभी भी गृह का आरंभ नहीं किया जाता.

गृहभूमि की लंबाई और चौड़ाई का गुणाकार करने से जो गुणनफल हो उसको क्षेत्रफल कहा जाता है. उसको आठ से भाग देने पर जो शेष बचे वह गृह का 'आय' होता है. क्षेत्रफल को फिर आठ से गुणा करके उसमें सत्ताईस से भाग देने पर जो शेष बचे वह गृह का 'नक्षत्र' होता है. जो नक्षत्र की संख्या आवे उसको आठ से भाग देने से जो शेष बचे वह 'व्यय' माना जाता है. आय के अंक से व्यय कर अंक कम हो तो वह घर लक्ष्मीप्रद माना है.

शाला, अलिंद (तिवारा), दीवार, स्तंभ, मंडप, जाली और गवाक्ष आदि के भेदों से अनेक प्रकार के गृह बनाये जाते हैं. शास्त्र में गृहों के सोलह हजार तीन सौ चौरासी भेद बतलाये हैं.

गृह के चारों दिशाओं के द्वारों के नाम अलग-अलग है—पूर्व दिशा के द्वार का नाम विजयद्वार, दक्षिणदिशा के द्वार का नाम यमद्वार, पश्चिम दिशा के द्वार का नाम मकरद्वार और उत्तर दिशा के द्वार का नाम कुबेर द्वार है. इनमें से अपनी इच्छानुसार बना सकते हैं.

गृह का स्थान-विभाग भी बतलाया गया है—गृह का जिस दिशा में द्वार हो उसको पूर्व दिशा मान करके विभाग बनाते हैं—द्वारवाली पूर्वदिशा में ज्ञानशाला, अग्निकोने में भोजन बनाने का स्थान, दक्षिण दिशा में शयन-गृह, नैर्ऋत्यकोने में निहार (शौच) स्थान, पश्चिम दिशा में भोजन करने का स्थान, वायु कोने में आयुध रखने का स्थान, उत्तर में धन रखने का स्थान और ईशान कोने में धर्मस्थान रखा जाता है.

गृह के प्रथम मंजिल तक की ऊँचाई पाँच से सात हाथ[1] तक रखना लिखा है. गृह का विस्तार जितने हाथ का होवे, उस संख्यातुल्य अंगुल में साठ अंगुल मिलाने से जितनी संख्या आए उतने अंगुल परिमित द्वार की ऊँचाई रखें और ऊँचाई से आधी चौड़ाई रखें. चौड़ाई कुछ बढ़ाना चाहे तो ऊँचाई का सोलहवाँ भाग चौड़ाई में मिला सकते हैं. गृह के सब द्वार, गवाक्ष और जाली आदि का मथाला बराबर रखा जाता है.

---

१. प्राचीन समय में अंगुल और हाथ से नापने की प्रणाली थी, अंग्रेजी राज्य होने के बाद इंच फुट और गज आदि से नापने की प्रणाली हुई. इसलिये आधुनिक गृह बनाने वाले शिल्पी अंगुल को एक इंच और हाथ को दो फुट मान करके कार्य करते हैं.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गृह में प्रवेश करने के चार प्रकार बतलाये हैं :

१. गृह का द्वार और प्रथम प्रवेश द्वार, ये दोनों एक ही दिशा में बराबर सामने हों तो उसको 'उत्संग' नामका प्रवेश माना है. यह सौभाग्यकारक, प्रजावृद्धिकारक और धनधान्य का वृद्धिकारक है.

२. प्रवेश द्वार से प्रविष्ट होने के बाद बाँयी ओर हो करके मुख्य गृह में प्रवेश हो तो वह 'हीन बाहु' नाम का प्रवेश माना है. यह स्वल्प धन वाला, स्वल्प मित्र वाला और रोगकारक माना है.

३. प्रवेश द्वार से प्रविष्ट होने के बाद दाहिनी ओर होकर के मुख्य गृह में प्रवेश होना 'पूर्ण बाहु' प्रवेश माना है. यह धन-धान्य की और पुत्रपौत्र का वृद्धि कारक है.

४. प्रथम गृह के पीछे की दीवार को देख करके पीछे प्रवेश होवे यह 'प्रत्यक्षाय' नाम का प्रवेश माना है, यह सर्वथा निंदनीय है.

गृह की ऊँचाई चारों दिशाओं में बराबर रखना चाहिए. यदि आगे के भाग में गृह ऊँचा हो और तीनों दिशाओं में नीचा हो तो वह गृह धन का हानिकारक होता है. दाहिनी ओर ऊँचा हो तो धन समृद्धि बढ़ाने वाला माना है. पीछे के भागमें ऊँचा हो तो समृद्धि बढ़ाने वाला है और बाँयी और ऊँचा हो तो वह गृह शून्य रहता है.

गृह में मुख्य सात प्रकार के वेध बतलाये हैं—जैसे :

'तलवेहं कोणवेहं तालुयवेहं कवालवेहं च ।
तह थंभ तुलावेहं दुवारवेहं च सतमयं ।'

तलवेध, कोणवेध, तालुवेध, कपालवेध, स्तंभवेध, तुलावेध और द्वारवेध-ये सात प्रकार के वेध है.

१. गृह की भूमि सम विषम ऊँची नीची हो, द्वार के सामने घानी, अरहट, कोल्हू आदि हो और दूसरे के मकान का पानी का परनाला अथवा रास्ता हो तो यह तलवेध माना जाता है.

२. मकान के चारों कोने समानान्तर न हों आगे पीछे हों तो वह कोणवेध है.

३. मकान के एक ही खंड में ऊपर की छत की पट्टियाँ ऊँची नीची हों तो यह तालुवेध माना है.

४. द्वार के ओतरंग के मध्य भाग में पाट आवे तो उसको कपालवेध कहते हैं.

५. गृह के मध्य भाग में एक स्तंभ हो अथवा अग्नि और पानी का स्थान हो तो यह हृदयशल्य अथवा स्तंभ वेध कहा जाता है.

६. मकान के नीचे के और ऊपर के मंजिल के पटिया न्यूनाधिक हों तो यह तुलावेध माना है.

७. मकान के दरवाजे के सामने कोई वृक्ष, कुआँ, स्तंभ, कोना और कील आदि हो तो यह द्वारवेध कहा जाता है. परन्तु मकान की ऊँचाई से दुगुनी भूमि छोड़ करके उपर्युक्त कोई वेध हो तो दोष नहीं माना जाता.

इन वेधों का फल वास्तुशास्त्र वत्थुसारपयरण में इस प्रकार लिखा है—

'तलवेहि कुट्ठरोगा हवंति उच्चेय कोणवेहम्मि ।
तालुयवेहेण भयं कुलक्खयं थंभवेहेण ।
कापालु तुलावेहे धणनासो हवइ रोरभावो अ ।
इअ वेहफलं नाउं सुद्धं गेहं करेअव्वं ।'

तलवेध से कुष्ठरोग, कोण वेध से उच्चाटन, तालुवेध से भय, स्तंभ के वेध से कुलक्षय, कपाल और तुलावेध से धन का विनाश और दरिद्र भाव होता है.

यह भी बतलाया गया है—दूसरे के मकान में जाने के लिये अपने मकान में से रास्ता हो तो विनाशकारक है. वृक्ष का वेध हो तो संतात की वृद्धि न हो. कीचड़ का वेध हो तो शोक हुआ करता है. परनाले का वेध हो धन का विनाश

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

होता है. कुआँ का वेध हो तो अपस्मार रोग हो. शिव, सूर्य आदि किसी देव का वेध हो तो गृहस्वामी का विनाश होता है. स्तंभ का वेध हो तो स्त्री को कष्टदायक रहे. ब्रह्मा के सामने द्वार हो तो कुल का विनाश हो. गृह के समीप कांटेवाले वृक्ष हों तो शत्रु का भय रहता है. दूधवाले वृक्ष हों तो लक्ष्मी का विनाश होता है और फलवाले वृक्ष होने से संतान वृद्धि नहीं होती. यह बृहत्संहिता ग्रंथ में कहा है.

मकान में बिजोरा, केला, दाडिम, नींबू, अमरूद, इमली, बब्बूल बेर, और पीलेफूल वाले वृक्ष इत्यादि वृक्ष नहीं बोने चाहिए. क्योंकि ये वृक्ष कुल के लिए हानिकारक माने जाते हैं.

मकान में योगिनियों के नाट्यारम्भ, महाभारत, रामायण, राजाओं के युद्ध, ऋषियों और देवों के चरित्र संबंधी चित्र नहीं बनाना चाहिए. परन्तु फलवाले वृक्षों, पुष्पों की लताओं, सरस्वती देवी, नवनिधान युक्त लक्ष्मीदेवी, कलश, स्वस्तिकादि मांगलिक चिह्न और अच्छे स्वप्नों की पंक्ति आदि के चित्र बनाना चाहिए.

उपर्युक्त जो वेध आदि संबन्धी दोष बतलाते हैं वे दोनों के बीच में दीवार अथवा रास्ते का अन्तर होने पर दोष नहीं रहते.

जिस मकान का द्वार बन्द करने के बाद अपने आप खुल जाय अथवा खोलने के बाद अपने आप बंद हो जाय तो वह अशुभ माना गया है.

यहाँ वास्तुशिल्प कला के आधार पर गृह सम्बन्धी कुछ गुण दोष बतलाये हैं. यह भारतीय प्राचीन संस्कृति है. आधुनिक समय में शिल्पियों को इसका अभ्यास नहीं होने से नवीन पद्धति से मकान बनाने लगे हैं. उनमें दोषों की संभावना होने से वे उन्नतिकारक नहीं हो सकते, यह प्राचीन शिल्पविधान का अभिमत है.

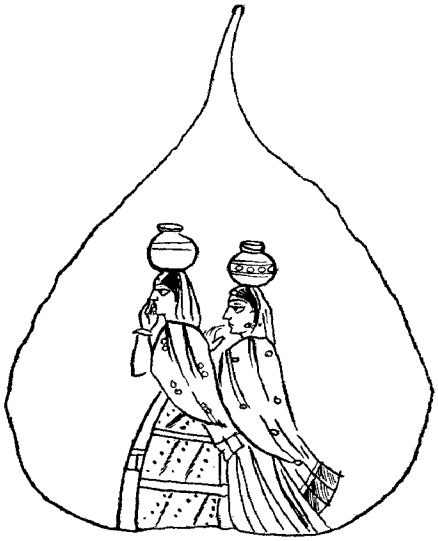

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org